नवस्वतंत्र भारत की राजसत्ता पर गांधी जी की कृपा से विराजमान नेतृत्व ने ऐसे लोगों को दरकिनार कर दिया, जिन्होंने कंधे से कंधा मिलाकर, सर्वस्व की बाजी लगाते हुए स्वातंत्र्य प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान किया था। नवस्वतंत्र भारत का भाग्योदय करने में उनकी प्रतिभाओं को नजरअंदाज किया गया। अपनी ही मनमानी की गई। आगे चलकर तो भ्रष्ट से भ्रष्ट राजनेताओं को केन्द्रीय मंत्रिमंडल में स्थान देकर सत्ता हस्तगत करने में भी संकोच नहीं किया। दूसरी ओर, अन्य दल बिकाऊ विधायकों के आधार पर बेहतर शासन देने की बातें करने में हिचकिचाते नहीं, जबकि उन्हें संयोगवश जहां बहुमत प्राप्त है, वहां भी उन्हें पार्टी में मची गुटबाजी पर काबू पाना मुश्किल हो रहा है। ऐसी हालत में शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार मिटाकर जनहितकारी कामों को कर पाना उनके लिए कैसे संभव है? यह है स्वतंत्रता के गत 57 साल से चलती आ रही राजनीतिक यात्रा की कहानी।

स्वतंत्र भारत के राजनेताओं ने सामाजिक जीवन की महत्ता को नहीं समझा। सत्ता पाने के लिए उन्होंने समाज को जिस तरह से चाहा, नोचा-खसोटा है। कुछ नेता कालबाह्य जातिगत भावनाओं को उभारकर समाज को क्षत-विक्षत कर रहे हैं, तो अन्य नेता क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काकर सत्ता पाने के लिए देश की एकता को हानि पहुंचा रहे हैं। मजहब के आधार पर देश का विभाजन हुआ। इससे सबक लेकर देश के सभी नागरिकों में सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने के स्थान पर सत्ता के लालच में नागरिकों में मजहब के आधार पर अलगाव बढ़ाने में ही लगे हुए हैं।

भारतीय जीवन-दृष्टि किसी को मुसलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी के रूप में नहीं देखती, अपितु वह मानव को मानव मानकर व्यवहार करना सिखाती है। अन्यथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा को साकार करने वाली भारतीय संस्कृति अपने समाज में नहीं पनपती।

दुर्भाग्यवश, स्वतंत्रता प्राप्त होते ही सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक नेतागण भी अपना-अपना मूलभूत दायित्व छोड़कर राजनीति की ए-बी-सी-डी न समझते हुए भी सत्ता-संघर्ष में कूद पड़े हैं। फलस्वरूप, भारतीय जीवन की कर्त्तव्य-पालन की परंपरा जीवन से ओझल होकर, अधिकार-लालसा का व्यक्तिवादी जीवन समाज में गहराता जा रहा है।

वस्तुत: विश्व में कहीं भी अनुकरणीय लोकतंत्र का नमूना दिखाई नहीं देता। विकसित कहे जाने वाले पश्चिमी देशों का चरित्र लोकतांत्रिक विकास के अनुकूल है ही नहीं। दुनियाभर के अविकसित एवं पिछड़े देशों को लूटकर उन्होंने अपना वैभव खड़ा किया है। यूरोप के नागरिकों ने अमेरिका के विशाल भूखण्डों पर, वहां के मूल निवासियों का सफाया कर अपना अधिकार जमा लिया है। उनका लोकतंत्र चुनाव प्रक्रिया तक ही सीमित है। उन्हें लोकतंत्र के पूर्ण विकसित रूप की आवश्यकता अनुभव ही नहीं होती। कारण, उनमें मानवीयता की भावना अभी विकसित होना शेष है। वे अभी तक उपभोग के उपासक बने रहने की ही अवस्था में हैं। उपभोग और अधिकाधिक उपभोग करना ही

उनके जीवन का लक्ष्य है। उपभोगमय जीवन का स्तर ऊंचे से ऊंचा उठाने के लिए अन्य देशों का शोषण करने वाली उनकी प्रवृत्ति अभी भी कायम है। दुनियाभर का विरोध होते हुए भी अमेरिका द्वारा इराक पर हमला करना, उसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जिसकी नजर परायों की धन-संपदा पर कभी नहीं रही। प्रभु राम ने किष्किंधा के राजा बालि को मृत्युदण्ड दिया। किन्तु उसके राज्य पर उसी के भाई सुग्रीव को बिठाया। सोने की लंका पर विजय पाकर वहां का सिंहासन रावण के बंधु विभीषण को सौंपा।

भारत अपने प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर वैभव के शिखर पर विराजमान हुआ था। वैभव के शिखर पर पहुंचकर भी वह ऐशो-आराम के मोह में नहीं फंसा। मानव मात्र के समुचित विकास के लिए प्रयत्नशील रहा। "सर्वेभवन्तु सुखिन:" की आकांक्षा उसी का निचोड़ है।

इस आकांक्षा को ध्यान में रखकर ही हमारे स्वातंत्र्य संग्राम के अग्रणियों ने बार-बार दोहराया था कि हमारा स्वातंत्र्य संग्राम केवल अपनी राजसत्ता वापिस लौटा लेने के लिए नहीं, अपितु विश्व भर में सह-अस्तित्व का स्नेहमय, सहयोगपूर्ण तथा प्रगतिशील जीवन का अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करने के लिए है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र भारत की दिशा क्या होनी चाहिए थी।

अपने परंपरागत चरित्र के अनुसार अपने लोकतंत्र का विकास करना हमारा दायित्व था। लोकतांत्रिक रचना के लिए चुनाव-प्रक्रिया अनिवार्य है। किन्तु चुनाव-प्रक्रिया स्वयं में लोकतंत्र नहीं है, लोकतंत्र के द्वार तक पहुंचाने वाली विधि मात्र है। लोकतंत्र तो चुनाव के बाद ही प्रारंभ होता है।

निर्वाचित जनप्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र के सभी नागरिकों के सक्रिय सहयोग से समाज की युगानुकूल नवरचना करें, यह अपेक्षित है। कारण, समाज ही शासन की मूलभूत शक्ति है। समाज सह-अस्तित्व से प्रेरित और सुसंगठित न रहा तो शासन सुशासन कदापि नहीं बन सकता। यह तथ्य नजर से ओझल हुआ तो लोकतंत्र की सफलता असंभव है।

भारत स्वतंत्र हुआ। सन् 1952 में स्वीकृत संविधान के अनुसार चुनाव हुए। नवस्वतंत्र भारत की पहली सरकार बनी। इस सरकार का प्राथमिक दायित्व था - स्वतंत्रता को स्वाधीनता में परिणत करना। यह स्वाधीनता जनप्रतिनिधियों द्वारा गठित मंत्रिमंडल तक ही सीमित रहनी नहीं चाहिए थी। अपितु देश की प्रत्येक आबादी स्वाधीन बनाने की दिशा में गतिशील होनी चाहिए थी। तभी हम अपने देश में लोकतंत्र का शुभारंभ मान सकते थे।

जब तक देश के छ: लाख गांव स्वावलंबी और स्वाभिमानी नहीं बनते, तब तक स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं होता। स्वतंत्रता के 57 वर्ष बीतने के बाद भी न देश के गांव स्वाधीन बन पाए हैं, न देश ही सर्वथा स्वाधीन हो पाया है। इस दुरावस्था के कारण देश का कोई नेता चिंतित होता हुआ दिखाई नहीं देता।

नेता कहलाने वाले महानुभाव प्रभावी वक्ता हो सकते हैं। तर्कयुक्त बहस करने में भी निपुण बन सकते हैं। संसद में बहस करने में निष्णात सिद्ध होकर पुरस्कार भी पा सकते